बी0ए0-III समाजशास्त्र
सामाजिक अनुसन्धान की पद्धतियाँ
(द्वितीय प्रश्नपत्र)
(Social Research Methods)
Unit-I
अध्याय–1
सामाजिक अनुसंधान : अर्थ, अध्ययन क्षेत्र एवं महत्व
(Social Research : Meaning, Scope and Importance)

मनुष्य एक चिन्तनशील प्राणी है, वह सोचता–विचारता है, अपने चारो ओर के रहस्यमय संसार को देखने और समझने का प्रयत्न करता है। वह विभिन्न प्रकार की घटनाओं के पीछे छिपे कारणों को ढूँढ निकालने की कोशिश करता है। उसने सूर्य, चाँद, तारे, आकाश, पृथ्वी, दिन–रात, ऋतुओं, आंधी, तूफान, वर्षा, नदी–पर्वत आदि को जानने का प्रयास किया। वह प्रारम्भ में इन सबको ईश्वर की सृष्टि मानकर उसे ही इन सभी का कारण मानने लगा। धीरे–धीरे प्रकृति के सम्बन्ध में उसका ज्ञान बढ़ता गया। वह प्रश्नों का उत्तर ढूँढता चला गया कि रात और दिन क्यों होते हैं, मौसम क्यों बदलता है, वर्षा क्यों होती है, आदि। जैसे–जैसे प्रकृति के सम्बन्ध में उसके ज्ञान में वृद्धि होती गयी, वैसे–वैसे प्रकृति पर उसका नियन्त्रण बढ़ता गया। मनुष्य अपनी जिज्ञासु प्रवृत्ति के कारण ही

बहुत कुछ जान पाया है, अनेक आविष्कार कर सका है, भौगोलिक दूरी को कम कर सका है। मनुष्य की चाँद पर पहुँच प्रकृति पर उसके बढ़ते हुए नियन्त्रण का ही परिणाम है।

स्पष्ट है कि मनुष्य एक जिज्ञासु प्राणी है। वह अज्ञात तथ्यों का पता लगाने की दिशा में निरन्तर आगे बढ़ता रहा है। पहले उसे प्राकृतिक घटनाओं को और फिर सामाजिक घटनाओं को समझने का प्रयास किया। सामाजिक घटनायें भी अपने आप में काफी जटिल है। एक ही घटना के पीछे अनेक कारण हो सकते हैं और उन सभी कारणों को खोज निकालना कोई सरल काम नही है। फिर भी मानव ने अपने ज्ञान की प्यास को सदैव बुझाने का प्रयास किया है, सामाजिक जीवन की जटिलताओं को समझने की लगातार कोशिश की है। उसने मानव व्यवहार के प्रेरकों को जानने की दिशा में निरन्तर प्रयत्न किया है। उसने यह पता लगाने में दिलचस्पी ली है कि वे कौन से नियम है जो मनुष्य की प्रेरणाओं व मनोवृत्तियों के आधार है। उसने अपने सामाजिक पर्यावरण को जानने की दिशा में काफी खोज की है। वह क्यों और कैसे, आदि प्रश्नों का उत्तर ढूँढने के प्रयास में लगा रहा है। वह आदिम, सरल और जटिल सामाजिक संरचनाओं को समझने हेतु सदैव प्रयत्न करता है। उसने यह जानने की कोशिश की है कि एक समाज और दूसरे समाज के रीति–रिवाजों, विश्वासों, मान्यताओं, परम्पराओं, संस्थाओं व संस्कृतियों में अन्तर क्यों पाये जाते हैं? किसी समाज में अपराध, बाल–अपराध व श्वेतवसन अपराध अन्य समाजों की तुलना में कम या अधिक क्यों होते हैं, अलग–अलग समाजों में

विवाह एवं परिवार के भिन्न–भिन्न रूप देखने को क्यों मिलते हैं? धर्म किस प्रकार आर्थिक विकास में योग देता है या बाँधा पहुँचाता है। किन समाजों में प्राथमिक और किन में द्वितीयक समूहों की प्रधानता पायी जाती है और क्यों पायी जाती है तथा इनका सामाजिक जीवन पर क्या प्रभाव पड़ता है? संघर्ष क्यों होते हैं, उनके पीछे मूलभूत कारण क्या है? पारिवारिक और सामुदायिक विघटन के लिये कौन से कारण उत्तरदायी है?

इसी प्रकार के अनेक प्रश्नों का उत्तर देने का मनुष्य ने अपने खोजमूलक प्रवृत्ति के आधार पर सदैव प्रयत्न किया है, कार्य–कारण सम्बन्धों को जानने की कोशिश की है। कहने का तात्पर्य यह है कि मनुष्य ने प्राकृतिक दशाओं तथा सामाजिक जटिलताओं को स्पष्ट करने का सदैव प्रयास किया है। साथ ही उसने प्राप्त ज्ञान की सत्यता का पता लगाने की कोशिश भी की है। उसने विभिन्न घटनाओं के सम्बन्ध में वैज्ञानिक विधि को काम में लेते हुए कार्य–कारण सम्बन्ध ढूँढने का प्रयत्न किया है, नये सिद्धान्तों का निर्माण किया है, पुराने सिद्धान्तों की सत्यता की जाँच नवीन परिप्रेक्ष्य में की है। यही शोध या अनुसंधान है। जब सामाजिक क्षेत्र में प्रश्नों का उत्तर खोजने का क्रमबद्ध एवं व्यवस्थित प्रयास किया जाता है तो उसे ही सामाजिक अनुसन्धान, शोध, गवेषणा, अन्वेषण या खोज नाम दिया जाता है।

अनुसन्धान (शोध) का अर्थ (Meaning of Research)–

मनुष्य ने प्रारम्भ में काल्पनिक या दार्शनिक आधार पर घटनाओं का विश्लेषण किया। उसने ईश्वर या अलौकिक शक्ति को सभी प्रकार की घटनाओं का स्रोत माना। पूर्व में उसके ज्ञान का आधार अन्तःप्रन्ता, परम्परा, वैयक्तिक अनुभव तथा 'प्रयत्न एवं भूल' की विधियाँ रही है। इस प्रकार से प्राप्त ज्ञान में विश्वसनीयता एवं प्रामाणिकता का अभाव था। आज व्यक्ति इस स्थिति से आगे बढ़ गया है और अब वह उसी घटना पर विश्वास करता है जिसे वह नेत्रों से देख सके, स्पर्श द्वारा अनुभव कर सके तथा कानों द्वारा सुन सके अर्थात् अब वह तार्किक आधार पर घटनाओं को समझने तथा वास्तविकता का पता लगाने लगा है। इस प्रकार वह अब वह व्यवस्थित ढंग से ज्ञान को संचित करता है। यही अनुसन्धान का प्रारम्भ है।

अनुसन्धान (शोध) का तात्पर्य 'बार–बार खोजने' से है। इसमें दो भौतिक तत्वों की प्रधानता पायी जाती है। प्रथम, अवलोकन द्वारा घटना को उद्देश्यपूर्ण ढंग से देखना अथवा उपलब्ध तथ्यों के आधार पर घटना को समझना तथा द्वितीय, उन तथ्यों के अर्थ को जानकर घटना के पीछे छिपे कारणों को समझना। इन दोनों तथ्यों को ध्यान में रखकर जो ज्ञान संचित किया जाता है, उसे विश्वसनीय एवं प्रामाणिक माना जाता है। इस प्रकार के ज्ञान को संचित करने की सम्पूर्ण प्रक्रिया को ही अनुसन्धान के नाम से पुकारते है। व्यक्ति ने धीरे–धीरे विश्वसनीय एवं प्रामाणिक ज्ञान प्राप्ति हेतु शोध की ऐसी विधि को खोज निकाला जिसे वैज्ञानिक विधि

(Scientific Method) कहते हैं। इस विधि में तथ्यों का संकलन भी निश्चित प्रविधियों द्वारा किया जाता है। इनमें अवलोकन, साक्षात्कार, अनुसूची, वैयक्तिक अध्ययन पद्धति, समाजमिति, आदि का सहारा लिया जाता है।

स्पष्ट है कि अनुसन्धान घटनाओं के बारे में ज्ञान प्राप्त करने तथा उन घटनाओं के मूल तक पहुँचने एवं कार्य–कारण सम्बन्धों का पता लगाने का एक व्यवस्थित वैज्ञानिक तरीका है। जब नवीन ज्ञान की प्राप्ति तथा विद्यमान ज्ञान में संशोधन, परिवर्द्धन या परिमार्जन के उद्‌देश्य से कोई व्यवस्थित प्रयत्न किये जाते हैं तो उन्हें ही अनुसन्धान या शोध के नाम से जाना जाता है। शोध में व्यक्ति अपनी जिज्ञासा के अनुरूप गहन अध्ययन करता है। उसकी जिज्ञासा का आधार चाहे प्राकृतिक दशाएं हो अथवा सामाजिक जटिलताएं, इनसे सम्बन्धित ज्ञान का स्पष्टीकरण करना तथा प्राप्त ज्ञान का सत्यापन करना, नये सिद्धान्तों का निर्माण करना तथा पुराने सिद्धान्तों की सत्यता का परीक्षण करना ही अनुसन्धान (शोध) है।

सामाजिक अनुसन्धान : अर्थ, विशेषतायें एवं प्रकृति (Meaning, Characteristics and Nature of Social Research)–

जब कोई भी अनुसंधान सामाजिक जीवन, सामाजिक घटनाओं अथवा सामाजिक जटिलताओं से सम्बन्धित होता है, तब उसे सामाजिक अनुसन्धान कहते हैं। इसमें इन सबके सम्बन्ध में यथार्थ ज्ञान प्राप्त किया जाता है। इस हेतु आनुभविक या अनुभवसिद्ध तथ्यों (Empirical Facts) का पता लगाया जाता है, निरीक्षण, परीक्षण, वर्गीकरण तथा सत्यापन के आधार पर सामाजिक घटनाओं के कारणों को ढूँढ निकाला जाता है। साथ

ही मानव व्यवहार से सम्बन्धित सामान्य नियमों का पता लगाया जाता है। सामाजिक अनुसन्धान में वैज्ञानिक विधि का काम में लेते हुए अवलोकन (Observation) तथा सत्यापन (Verification) का विशेषतः सहारा लिया जाता है।

सामाजिक अनुसन्धान में सर्वप्रथम किसी व्यवहार, समस्या या घटना से सम्बन्धित मूलभूत तथ्यों का अवलोकन किया जाता है ताकि उसकी सामान्य प्रकृति को भली–भाँति समझा जा सके। तत्पश्चात् उन सामाजिक नियमों का पता लगाया जाता है तो एक विशेष घटना, व्यवहार या समस्या के पीछे छिपे कारणों को प्रकट कर सके। संक्षेप में, हम कह सकते हैं कि सामाजिक अनुसंधान में सामाजिक यथार्थताओं (Social Realities) की वैज्ञानिक विधि द्वारा खोज पर विशेष बल दिया जाता है।

सामाजिक अनुसन्धान का अर्थ स्पष्ट करते हुए श्रीमती पी0वी0 यंग ने लिखा है, ''सामाजिक अनुसन्धान को ऐसे वैज्ञानिक प्रयत्न के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिसका उद्देश्य तार्किक एवं क्रमबद्ध पद्धतियों के द्वारा नवीन तथ्यों की खोज अथवा पुराने तथ्यों की परीक्षा और सत्यापन; उनके क्रमों, पारस्परिक सम्बन्धों, कार्य–कारण की व्याख्या एवं उन्हें संचालित करने वाले स्वाभाविक नियमों का विश्लेषण करना है।''

स्पष्ट है कि सामाजिक अनुसन्धान खोज की ऐसी विधि है जिसमें सामाजिक परिस्थिति के सन्दर्भ में किसी घटना, व्यवहार, सामाजिक जीवन अथवा समस्या के सम्बन्ध में वैज्ञानिक विधि का प्रयोग करते हुए सामाजिक यथार्थता को समझने का प्रयत्न किया जाता है। इसमें निरीक्षण,

परीक्षण, तथ्यों के संकलन, वर्गीकरण तथा सामान्यीकरण द्वारा सामाजिक घटनाओं के कारणों का पता लगाया और वस्तु–स्थिति की तार्किक ढंग से विवेचना की जाती है।

सामाजिक अनुसन्धान एक ऐसी विधि है जिसमें प्राक्कल्पना (Hypothesis) की उपयुक्तता की जाँच अथवा परीक्षण किया जाता है।

सामाजिक अनुसंधान जहाँ विशुद्ध ज्ञान की खोज पर जोर देता है, वहाँ साथ ही इसका प्रयोग व्यावहारिक समस्याओं को हल करने के लिए भी किया जा सकता है। कहने का तात्पर्य यह है कि सैद्धान्तिक और व्यावहारिक दोनों ही प्रकार की समस्याओं के हल के लिए सामाजिक अनुसन्धान किया जा सकता है।

सामाजिक अनुसन्धान की प्रकृति की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसकी सहायता से सामाजिक जीवन एवं घटनाओं पर नियन्त्रण पाने का प्रयास किया जाता है। अनुसन्धानकर्ता अपने अनुसन्धान कार्य में प्रयोगात्मक पद्धति का प्रयोग करते हुए कुछ सामाजिक घटनाओं को नियन्त्रित करके उन्हीं के समान अन्य सामाजिक घटनाओं पर विभिन्न कारकों के प्रभावों को देखता है। इससे सामाजिक जीवन व घटनाओं के सम्बन्ध में उसके ज्ञान में वृद्धि होती है, उस पर उसका नियन्त्रण बढ़ता जाता है, उसकी भविष्योक्ति की क्षमता (Predictability) बढ़ती जाती है। इससे मानव जीवन को अधिकाधिक सुखी बनाने में सहायता मिलती है।

सामाजिक अनुसंधान की एक अन्य विशेषता यह है कि इसमें केवल मानव से सम्बन्धित सामाजिक घटनाओं का ही अध्ययन किया जाता है। प्राकृतिक, भौतिक या अन्य प्राणियों के सामूहिक जीवन से सम्बन्धित अध्ययन सामाजिक अनुसन्धान के अन्तर्गत नहीं किये जाते।

सामाजिक अनुसन्धान के उद्देश्य (Objectives of Social Research)—

1. सैद्धान्तिक अथवा बौद्धिक उद्देश्य—

सभी अनुसन्धान कार्यों का मूल उद्देश्य ज्ञान की वृद्धि करना अथवा अज्ञानता की समाप्ति करना होता है। सामाजिक अनुसंधान का उद्देश्य भी इस दृष्टिकोण से उन सिद्धान्तों का प्रतिपादन करना है जिनके द्वारा सामाजिक घटनाओं की आन्तरिक प्रकृति को समझा जा सके। इसके अतिरिक्त, सैद्धान्तिक उद्देश्य का तात्पर्य यह भी है कि अनुसन्धानकर्ता द्वारा विभिन्न सामाजिक घटनाओं और तथ्यों के बीच पाये जाने वाले प्रकार्यात्मक सम्बन्धों (Functional Relationships) की खोज की जाये तथा उन स्वाभाविक नियमों को ढूँढ निकाला जाये जिनके द्वारा सामाजिक घटनायें निर्देशित तथा नियन्त्रित होती हैं।

2. व्यावहारिक अथवा उपयोगितावादी उद्देश्य—

कोई भी ज्ञान व्यर्थ है जिसका व्यावहारिक उपयोग न किया जा सके। एकॉफ (R.L. Ackoff) ने लिखा है कि जो व्यक्ति अनुसन्धान से प्राप्त निष्कर्षों को केवल अपने तक सीमित रखता है, वह वास्तव में वैज्ञानिक नहीं हो सकता। विज्ञान अनिवार्य रूप से सार्वजनिक होता है।

इसका तात्पर्य यह है कि वैज्ञानिक ज्ञान तभी सार्थक हो सकता है जब वह उपयोगितावादी हो अथवा इससे दूसरे लोग लाभ उठा सके। इस दृष्टिकोण से सामाजिक अनुसन्धान का उद्देश्य विभिन्न सामाजिक समस्याओं की विस्तृत जानकारी प्राप्त करके उनके निराकरण के लिये उपयोगी सुझाव प्रस्तुत करना है। केवल इसी दृष्टिकोण से सामाजिक अनुसन्धान के द्वारा विभिन्न प्रकार के सामाजिक संघर्षों, तनावों, अपराधों एवं अन्य समस्याओं को सुलझाने में सहायता मिल सकती है। सामाजिक अनुसंधान द्वारा प्राप्त ज्ञान समाज सुधारकों तथा प्रशासकों को कार्य करने की एक नई दिशा दे सकता है।

वास्तव में, सामाजिक अनुसंधान के सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक उद्देश्य एक–दूसरे से पृथक् न होकर एक–दूसरे से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित है। इसका तात्पर्य यह है कि अनुसंधान का उद्देश्य चाहे सैद्धान्तिक हो अथवा व्यावहारिक, प्रत्येक अनुसन्धान कार्य मानव कल्याण में वृद्धि करता है। व्यावहारिक उद्देय की पूर्ति भी सैद्धान्तिक उद्देश्यों में ही निहित रहती है। दोनों उद्देश्यों में से किसी को भी दूसरे की अपेक्षा अधिक अथवा कम महत्वपूर्ण नहीं कहा जा सकता।

सामाजिक अनुसन्धान का अध्ययन क्षेत्र (Scope of Social Research)–

सामाजिक अनुसन्धान के अध्ययन क्षेत्र को निम्नांकित रूप में समझा जा सकता है–

1. सामाजिक जीवन की संरचना तथा प्रकार्यों से सम्बन्धित अनुसन्धान–

इस श्रेणी के अन्तर्गत वे सभी अनुसंधान कार्य आते हैं जिनका सम्बन्ध सामाजिक जीवन की संरचना को बनाने वाली विभिनन इकाइयों, उनके विभिन्न प्रकार्यों तथा उनके अन्तर–सम्बन्धों से है। इसके फलस्वरूप किसी भी विशेष सामाजिक संरचना अथवा उपसंरचना की सम्पूर्ण प्रकृति को समझना संभव हो जाता है। भारत में विभिन्न जनजातियों, ग्रामीण समुदायों, कृषक समाज तथा जाति व्यवस्था आदि से सम्बन्धित जो अनुसन्धान कार्य किये गये हैं, वे इसी वर्ग के अन्तर्गत आते हैं। इसके द्वारा विभिन्न समूहों के पारस्परिक सम्बन्धों तथा परिवर्तनशील विशेषताओं का अध्ययन संभव होने के साथ ही सामाजिक जीवन से सम्बद्ध नयी प्रवृत्तियों को भी ज्ञात किया जा सकता है।

2. नये सिद्धान्तों के प्रतिपादन से सम्बन्धित अनुसन्धान–

सामाजिक अनुसंधान का क्षेत्र उन विषयों के अध्ययन से भी सम्बन्धित है जिनकी सहायता से अध्ययन के नये आयामों को ढूँढा जा सके तथा नये सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया जा सके। इस प्रकार के अनुसन्धान कार्य मुख्यतः अनुभवसिद्ध तथ्यों पर आधारित होते हैं तथा उनका उद्देश्य किसी विषय से सम्बन्धित भावी प्रवृत्तियों को ज्ञात करना होता है। उदाहरण के लिये, भारत में जेल सुधार, बाल–अपराध, अपराधी व्यवहारों, परिवार व्यवस्था, अन्तर्जातीय विवाहों, आधुनिकीकरण से सम्बन्धित प्रवृत्तियों तथा पुनर्वास से सम्बन्धित जो अनुसंधान कार्य किये गये हैं, उनमें से अधिकांश अनुसन्धान कार्यों का उद्देश्य नये सिद्धान्तों

का प्रतिपादन करके यह ज्ञात करना है कि कुछ विशेष प्रक्रियाएँ अथवा प्रयत्न भविष्य में एक विशेष सामाजिक व्यवस्था को किस प्रकार प्रभावित करेंगे।

3. पुराने सिद्धान्तों के सत्यापन से सम्बन्धित अनुसंधान–

सामाजिक अनुसन्धान के द्वारा केवल नये सिद्धान्तों का प्रतिपादन ही नहीं किया जाता बल्कि इसके द्वारा कभी–कभी पुराने सिद्धान्तों की जाँच भी की जाती है। जब कभी भी सामाजिक दशाओं में परिवर्तन होता है तो पूर्व निर्धारित सिद्धान्त भी उपयोगी नहीं रह जाते। ऐसी दशा में अनेक अनुसंधान कार्य यह जानने के लिऐ किये जाते है कि पहले बनाये गये सिद्धान्त वर्तमान दशाओं में किस सीमा तक उपयोगी रह गये हैं।

4. द्वितीयक तथ्यों पर आधारित अनुसंधान–

अनेक सामाजिक अनुसंधान इस प्रकार के होते हैं जिनमें किसी पृथक् सिद्धान्त का प्रतिपादन नहीं किया जाता बल्कि विद्यमान सिद्धान्तों के अन्तर्गत द्वितीयक तथ्य एकत्रित करके उनका विश्लेषण किया जाता है। ऐसे अनुसन्धान कार्य में ऐतिहासिक पद्धति की प्रधानता होती है। उदाहरण के लिए, बाल अपराधियों से सम्बन्धित तथ्यों को एकत्रित करके इस निष्कर्ष को पुनः प्रमाणित किया जा सकता है कि टूटे हुए परिवार बाल–अपराध का सर्वप्रमुख कारण है या नहीं। इस दृष्टिकोण से ऐसे अनुसन्धान कार्यों का क्षेत्र बहुत व्यापक है जो जनसंख्या, सामाजिक गतिशीलता, सामाजिक परिवर्तन तथा मानव व्यवहारों आदि के सम्बन्ध में

वर्तमान सिद्धान्तों के अन्तर्गत ही भावी प्रवृत्तियों को स्पष्ट करने के लिए किये जाते है।

5. प्रयोगात्मक पद्धति पर आधारित अनुसंधान–

आज यह स्वीकार किया जाने लगा है कि प्राकृतिक विज्ञानों के समान ही सामाजिक विज्ञानों में भी प्रयोगात्मक अनुसन्धान कार्य संभव है। चैपिन (Chapin) का कथन है कि जब किसी विशेष समस्या से सम्बन्धित कारकों को ज्ञात करने में अवलोकन उपयोगी नहीं रह जाता है तब समाज वैज्ञाानिकों के लिये यह आवश्यक हो जाता है कि वे प्रयोग का आश्रय लेकर सत्यता को जानने का प्रयत्न करें।

ऐसे अनुसन्धान– कार्यों के अन्तर्गत विभिन्न दशाओं में से एक या दो दशाओं को नियन्त्रित करके उन पर दूसरी परिवर्तनशील दशाओं के प्रभाव को ज्ञात करके सामान्य प्रवृत्ति को स्पष्ट किया जाता है। उदाहरण के लिये, प्रदीप्तो रॉय ने ग्रामीणों के बीच रेडिया कार्यक्रमों के प्रभाव को देखने के लिये इसी प्रकार के अनुसन्धान किये है।

इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि सामाजिक अनुसन्धान का अध्ययन– क्षेत्र बहुत व्यापक है।

सामाजिक अनुसंधान के चरण (Steps in Social Research)–

वैज्ञानिक अनुसन्धान से सम्बन्धित प्रमुख चरण निम्नांकित है–

1. विषय का चुनाव–

अनुसन्धान का सबसे पहला चरण अनुसन्धानकर्ता द्वारा अत्यधिक सावधानीपूर्वक अध्ययन–विषय का चुनाव करना है। विषय का चुनाव करते समय यह ध्यान रखना आवश्यक है कि अध्ययन–विषय ऐसा हो जिस पर निश्चित समय में उपलब्ध उपकरणों की सहायता से अध्ययन कार्य को पूरा किया जा सके। ऐसे विषय का चयन नहीं करना चाहिए जिससे सम्बन्धित प्रामाणिक तथ्य उपलब्ध न हो सके अथवा जिससे सम्बन्धित अध्ययन के लिये कुशल पद्धतियां उपलब्ध न हो।

2. सम्बन्धित साहित्य का अध्ययन–

अनुसंधानकर्ता के लिये यह आवश्यक है कि वह चुने गये अनुसंधान विषय के सम्बन्ध में उन सभी विचारों, पद्धतियों, कठिनाइयों एवं निष्कर्ष का अध्ययन करे जो उससे पूर्व के अध्ययनकर्ताओं द्वारा प्रस्तुत किये गये हैं। आरम्भ में ही ऐसा कर लेने से अनुसंधान को दिशा मिल जाती है तथा अनुसंधानकर्ता उपागमों से भी परिचित हो जाता है। अनुसन्धान से सम्बन्धित साहित्य अनेक प्रकार के प्रलेखों, लेखों, पत्रों, पुस्तकों तथा प्रतिवेदनों से प्राप्त हो सकता है।

3. इकाइयों का निर्धारण तथा स्पष्टीकरण–

प्रयोग में लाये जाने वाले शब्द स्पष्ट और सुपरिभाषित होने चाहिये। इकाइयों का निर्धारण करते समय यह ध्यान रखना आवश्यक है कि यह अध्ययन के उद्‌देश्य से सम्बन्धित हो तथा उनका क्षेत्र पूर्णतया स्पष्ट हो।

ऐसा करने से तथ्यों का संकलन आसानी से हो जाता है तथा उनका विवेचन और प्रस्तुतीकरण करना भी सरल हो जाता है। यदि इकाइयों का अर्थ स्पष्ट न किया जाये तो सभी उसका अलग–अलग अर्थ लगा सकते हैं जिससे अध्ययन की वस्तुनिष्ठता समाप्त हो जाती है।

4. परिकल्पना का निर्माण–

परिकल्पना अध्ययन के आरम्भ में ही लिया जाने वाला एक ऐसा सामान्य निष्कर्ष है जिसकी प्रामाणिकता की परीक्षा बाद में एकत्रित किये गये तथ्यों के आधार पर की जाती है। परिकल्पना की सहायता से ही अनुसंधानकर्ता को अध्ययन से सम्बन्धित वास्तविक दिशा प्राप्त होती है तथा अनुसन्धानकर्ता इधर–इधर भटकने से बच जाता है। यह सच है कि कुछ विशेष प्रकार के अनुसन्धान कार्यों विशेषकर प्रयोगात्मक अनुसन्धान में परिकल्पना का महत्व अपेक्षाकृत रूप से कम होता है लेकिन फिर भी यह अनुसन्धान का एक महत्वपूर्ण चरण है।

5. अध्ययन–क्षेत्र का निर्माण–

सफल अनुसंधान के लिए यह आवश्यक होता है कि अध्ययन से सम्बन्धित क्षेत्र का स्पष्ट रूप से निर्धारण हो। अध्ययन–क्षेत्र ऐसा होना चाहिये जिससे सम्बन्धित तथ्यों का संकलन वस्तुनिष्ठ रूप में किया जा सके। अध्ययन–क्षेत्र का आकार न तो बहुत बड़ा होना चाहिए और न ही बहुत छोटा। बहुत छोटे आकार के क्षेत्र से उपयोगी निष्कर्ष प्राप्त कर सकना बहुत कठिन होता है जबकि आवश्यकता से अधिक बड़े

अध्ययन–क्षेत्र पर आधारित अनुसन्धान में एक निश्चित समय के अन्दर कार्य को पूरा कर सकता कठिन होता है।

6. सूचनादाताओं का चयन–

अध्ययन–क्षेत्र छोटा होने पर सूचनाओं का चयन जनगणना पद्धति (Census Method) द्वारा तथा अध्ययन क्षेत्र बड़ा होने पर निदर्शन पद्धति (Sampling Method) के द्वारा किया जा सकता है। विभिन्न विधियों की सहायता से ऐसे सूचनाओं का चयन करना उपयोगी होता है जो समग्र के सभी पक्षों का अधिकाधिक प्रतिनिधित्व कर सके। सूचनादाताओं की संख्या अध्ययन विषय को ध्यान में रखकर तय की जानी चाहिए। साधारणतया एक वैयक्तिक अनुसंधान में कम से कम 300 तथा अधिक से अधिक 500 सूचनादाताओं का चयन अच्छा समझा जाता है।

7. सूचना के स्रोतों का निर्धारण–

सूचना के यह स्रोत मुख्य रूप से दो प्रकार के होते हैं–

1. प्राथमिक अथवा क्षेत्रीय (Primary)
2. द्वितीयक अथवा प्रलेखीय (Secondary or Documentary)

प्राथमिक स्रोत वे है जिनसे एक अनुसन्धानकर्ता स्वयं ही और प्रथम बार सूचनाएं एकत्रित करता है। द्वितीयक स्रोत वे है जो पहले से ही दूसरे व्यक्तियों द्वारा संकलित तथ्य प्रदान करते हैं। इस दृष्टिकोण से सभी अभिलेख, प्रतिवेदन, गजेटियर, पुस्तकें, पाण्डुलिपियाँ, पत्र–पत्रिकाएँ तथा अनुसन्धान– ग्रन्थ आदि सूचना के द्वितीयक स्रोत है।

सभी अनुसंधान–कार्यों में साधारणतया प्राथमिक और द्वितीयक दोनों प्रकार के स्त्रोतों का उपयोग किया जाता है।

8. अध्ययन के उपकरणों तथा प्रविधियों का निर्धारण–

अनुसूची, प्रश्नावली, निदर्शन, अवलोकन तथा साक्षात्कार आदि अनुसंधान की कुछ प्रमुख प्रविधियाँ हैं जिनके समुचित प्रयोग से ही विश्वसनीय सूचनायें एकत्रित की जा सकती है। इन प्रविधियों का चुनाव सदैव समस्या की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए किया जाना चाहिए।

9. उपकरणों तथा प्रविधियों का पूव–परीक्षण–

अनुसन्धानकर्ता के लिये यह आवश्यक होता है कि वह वास्तविक अनुसन्धान कार्य आरम्भ करने से पहले अपपने अध्ययन से सम्बन्धित सभी उपकरणों तथा प्रविधियों को एक छोटे से क्षेत्र पर लागू करके उनके दोषों को ज्ञात करने और उन्हें दूर करने का प्रयास करें। इस दृष्टिकोण से पूर्व–परीक्षण एक तरह का 'पद्धतिशास्त्रीय पूर्वाभ्यास' है।

10. तथ्यों का एकत्रीकरण–

इस स्तर पर यह आवश्यक हो जाता है कि तथ्यों को पक्षपातरहित होकर एकत्रित किया जाये तथा ऐसा करते समय व्यक्तिगत धारणाओं और पूर्वाग्रहों को कोई महत्व न दिया जाये। तथ्यों को उसी रूप में एकत्रित करना आवश्यक है जैसे कि वे वास्तव में है।

11. तथ्यों का सम्पादन, संकेतन, वर्गीकरण तथा सारणीयन–

तथ्यों के सम्पादन का अभिप्राय एकत्रित तथ्यों का सूक्ष्म निरीक्षण करके उनमें दिखाई देने वाली अशुद्धियों, त्रुटियों और कमियों को यथासम्भव दूर करना है। संकेतन के अन्तर्गत अनुसन्धानकर्ता व्याख्यात्मक उत्तरों को अनेक संकेतों, प्रतीकों तथा अंकों की सहायता से संक्षिप्त तथा व्यवस्थित करने का प्रयास करता है। वर्गीकरण से तात्पर्य प्रकृति के तथ्यों को एक–एक वर्ग में विभाजित करने से है। वर्गीकरण के आधार पर ही विभिन्न घटनाओं अथवा दशाओं के बीच तुलना करना और उनके सह–सम्बन्ध को ज्ञात करना सम्भव होता है। सारणीयन का तात्पर्य विभिन्न तथ्यों को संख्यात्मक रूप में अनेक पदों में इस प्रकार व्यवस्थित करना होता है जिससे एक विशेष वर्ग से सम्बन्धित बहुत सी संख्याओं अथवा विशेषताओं को संक्षिप्त सारणियों के द्वारा समझा जा सके।

12. तथ्यों का सांख्यिकीय विश्लेषण–

अनुसन्धान के दौरान एक अध्ययनकर्ता को अनेक ऐसे तथ्य प्राप्त होते है जिनकी केन्द्रीय प्रवृत्ति को ज्ञात करना, विभिन्न तथ्यों के तुलनात्मक महत्व को देखना तथा तथ्यों के बीच सह–सम्बन्ध को स्पष्ट करना आवश्यक होता है। इस कार्य के लिए माध्य, मध्यांक, बहुलांक, मानक विचलन तथा सह–सम्बन्ध आदि अनेक सांख्यिकीय विधियाँ हैं जिनकी सहायता से तथ्यों का सांख्यिकीय विश्लेषण किया जा सकता है। ऐसे विश्लेषण से तथ्यों को बहुत संक्षिप्त तथा सरल रूप से प्रस्तुत करना संभव हो पाता है।

13. तथ्यों का विश्लेषण तथा विवेचन–

अध्ययन से सम्बन्धित तथ्य केवल कच्चे माल की तरह होते हैं लेकिन विश्लेषण तथा विवेचन के द्वारा ही उन्हें व्यवस्थित रूप दिया जा सकता है। तथ्यों के विश्लेषण और विवेचन का सम्बन्ध प्राप्त तथ्यों का अर्थ स्पष्ट करने तथा उपकल्पना पर प्रकाश डालने से होता है। विभिन्न तथ्यो के बीच कार्य कारण का सम्बन्ध भी इसी स्तर पर स्पष्ट किया जाता है।

14. प्रतिवेदन का प्रस्तुतीकरण–

अनुसन्धान का यह सबसे अन्तिम लेकिन सबसे महत्वपूर्ण चरण है। प्रतिवेदन के माध्यम से ही अनुसंधानकर्ता अनुसंधान से सम्बन्धित सभी तथ्यों की व्यवस्थित रूप से जनसामान्य के समक्ष प्रस्तुत करता है। अनुसंधान–प्रतिवेदन मुख्यतः तीन भागों में विभाजित होना आवश्यक है। प्रथम भाग में पद्धतिशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य एवं अवधारणाओं को स्पष्ट किया जाता है। दूसरा भाग सबसे अधिक विस्तृत है जिसके अन्तर्गत अध्ययन विषय के विभिन्न पक्षों से सम्बन्धित तथ्यो ंके कारणात्मक सम्बन्ध की व्याख्या की जाती है। तीसरे भाग में प्राप्त तथ्यों के आधार पर सामान्य निष्कर्ष प्रस्तुत किये जाते हैं। इसी को हम सामान्यीकरण (Generalization) अथवा सैद्धान्तीकरण (Theorization) कहते हैं।

प्रतिवेदन प्रस्तुत करते समय महत्वपूर्ण सांख्यिकीय तथ्यों को विभिन्न प्रकार के चित्रों द्वारा प्रस्तुत करना उपयोगी होता है जिससे सामान्य

व्यक्ति भी उसके अभिप्राय को समझ सकें। प्रतिवेदन के अन्त में अध्ययन विषय से सम्बन्धित दूसरे अध्ययनों को स्पष्ट करने के लिए सन्दर्भ–सूची (Bibliography) देना आवश्यक होता है। इसके अतिरिक्त, कुछ महत्वपूर्ण लेकिन लम्बी तालिकाओं एवं प्रश्नावली के प्रारूप आदि को परिशिष्ट (Appendix) के रूप में दिया जाना चाहिए।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि वैज्ञानिक अनुसंधान एक लम्बी प्रक्रिया है तथा इसके प्रत्येक स्तर पर अनुसन्धानकर्ता के लिए अनेक सावधानियों को ध्यान में रखना आवश्यक होता है।

सामाजिक अनुसंधान का महत्व (Importance of Social Research)–

विभिन्न क्षेत्रों में सामाजिक अनुसन्धान की उपयोगिता अथवा महत्व को निम्नांकित रूप से समझा जा सकता है।

1. नवीन ज्ञान की प्राप्ति–

सामाजिक अनुसन्धान का सबसे महत्वपूर्ण उपयोग नवीन ज्ञान की प्रप्ति से सम्बन्धित है, उपयोगी ज्ञान की सहायता से ही प्रगति के मार्ग पर आगे बढ़ा जा सकता है।

2. अज्ञानता की समाप्ति–

सामाजिक अनुसंधान ही एकमात्र ऐसा आधार है जिसके द्वारा मानव धीरे–धीरे अपनी अज्ञानता को समाप्त कर सकता है। हमारे समाज में आज क्षेत्रवाद, भाषावाद, जातिवाद, वर्गवाद, भ्रष्टाचार, युवा तनाव, अपराध, धर्म, नैतिकता और मनोरंजन में पतन जैसी जो विषम समस्यायें विद्यमान

हैं, उनके वास्तविक कारणों को अनुसंधान के द्वारा ज्ञात करके ही इसके प्रभाव को कम किया जा सकता हे।

3. समाज कल्याण में सहायक–

समाज कल्याण वर्तमान जीवन की प्रमुख आवश्यकता है। विभिन्न सामाजिक अनुसंधानों से यह स्पष्ट हो चुका है कि समाज की संरचना में विद्यमान तत्व ही विभिन्न समस्याओं का वास्तविक कारण होते हैं। सामाजिक अनुसंधान के द्वारा इन तत्वों का ज्ञान प्राप्त करके समाज को अधिक संगठित किया जा सकता है। आज की वास्तविकता यही है कि समाज कल्याण से सम्बन्धित कोई भी कार्यक्रम तब तक सफल नहीं हो सकता है जब तक अनुसंधान से प्राप्त निष्कर्षों के आधार पर उसे एक व्यावहारिक स्वरूप न प्रदान किया जाये।

4. सामाजिक नियंत्रण में सहायक–

आज अनेक कारणों से सामाजिक परिवर्तन की गति तेज हुयी है। द्रूतगामी परिवर्तनों के कारण सामाजिक व्यवस्था में असंतुलन की स्थिति उत्पन्न हुई है। परिणामस्वरूप वैयक्तिक, पारिवारिक एवं सामाजिक विघटन बढ़ा है। सामाजिक अनुसन्धान के द्वारा ही मानवीय सम्बन्धों को व्यवस्थित बनाने वाली प्रक्रियाओं का पता लगाया जा सकता है और असन्तुलन व विघटन की स्थिति से छुटकारा प्राप्त किया जा सकता है। ऐसा करके ही सामाजिक नियंत्रण के लिये दृढ़ आधार प्रदान किया जा सकता है।

5. प्रशासन एवं समाज–सुधार में उपयोगिता–

एक प्रशासक विभिन्न दशाओं में एक प्रभावपूर्ण भूमिका तभी निभा सकता है जब वह अपने चारों ओर की वास्तविक दशाओं से परिचित हो तथा विभिन्न समस्याओं के आधारभूत कारणों को जानता हो। ऐसा ज्ञान उसे अनुसंधान पर आधारित निष्कर्षों से ही प्राप्त हो सकता है। समाज–सुधारक अपने सीमित ज्ञान के आधार पर विभिन्न समस्याओं की वास्तविक प्रकृति को ठीक से नहीं समझ पाते। वे समाज–सुधारक के रूप में अपनी भूमिका प्रभावशाली ढंग से उसी समय निभा सकते हैं जब उन्हें सामाजिक अनुसंधान द्वारा आवश्यक ज्ञात प्रदान किया जाये।

6. भविष्यवाणी का आधार–

सामाजिक अनुसंधान द्वारा प्राप्त ज्ञान की इस रूप में विशेष उपयोगिता है कि इसके आधार पर वर्तमान को समझकर भविष्य के बारे में अनुमान लगाया जा सकता है, भविष्य की सामाजिक घटनाओं के बारे में बताया जा सकता है। जब अनुसंधान द्वारा भविष्य में उत्पन्न होने वाली दशाओं का पता लगा लिया जाता है तो उनके साथ सफलतापूर्वक समायोजन और सामाजिक जीवन में सन्तुलन स्थापित किया जा सकता है।

7. सामाजिक विज्ञानों के विकास में योगदान–

सामाजिक अनुसन्धान के द्वारा जब अध्ययन की नयी प्रविधियों और उपकरणों का विकास होता है तो इससे प्रत्येक समाज विज्ञान को अपना

विकास करने के अवसर प्राप्त होते हैं। सभी सामाजिक विज्ञान किसी न किसी रूप में मानवीय सम्बन्धों, सामाजिक प्रक्रियाओं तथा सामाजिक घटनाओं का ही अध्ययन करते हैं। इस प्रकार सामाजिक अनुसन्धान सामाजिक ज्ञान की किसी भी शाखा से सम्बन्धित हो, वह विभिन्न सामाजिक विज्ञानों के बीच पारस्परिक निर्भरता को प्रोत्साहन देकर उनके विकास का मार्ग प्रशस्त करते है।

8. उपकल्पना की जाँच का आधार–

सामाजिक अनुसंधान वह महत्वपूर्ण आधार है जिसके द्वारा हम विभिन्न उपकल्पनों की जाँच करके किसी वास्तविक निष्कर्ष तक पहुँचते है। उपकल्पना की जाँच के द्वारा सामाजिक अनुसन्धान ऐसे तार्किक निष्कर्ष प्रदान करता है जिनकी सहायता से उपयोगी सिद्धान्तों का निर्माण संभव हो जाता है। वास्तव में, अधिकांश सामाजिक सिद्धान्त सर्वकालिक नहीं होते। सामाजिक आवश्यकताओं, मूल्यों और मानवीय ज्ञान में परिवर्तन के साथ इनकी उपयोगिता में परिवर्तन होता रहता है। सामाजिक अनुसंधान के द्वारा ही यह ज्ञात किया जा सकता है कि अतीत के सिद्धान्त वर्तमान दशाओं में किस सीमा तक उपयोगी अथवा अनुपयोगी है।

9. मध्यवर्ती सिद्धान्तों का विकास–

मर्टन ने मध्यवर्ती सिद्धान्तों (Middle Range Theories) के निर्माण में सामाजिक अनुसंधान को विशेष रूप से महत्वपूर्ण माना है। हम जिन घटनाओं के बीच रहते हैं, साधारणतया हम उन्हें बहुत सामान्य रूप से

देखते हैं। यदि आनुभाविक रूप से हम अपने चारों ओर फैली विभिन्न घटनाओं के कारणों और परिणामें पर विचार करने लगे तो इससे किसी समूह, संगठन या समुदाय के बारे में ऐसे निष्कर्ष प्राप्त होने लगते हैं जिनकी सहायता से वृहत् समाजशास्त्रीय सिद्धान्तों को विकसित किया जा सकता है।

सामाजिक अनुसंधान के इस सम्पूर्ण विवेचन से स्पष्ट होता है कि सामाजिक जीवन का आज कोई भी पक्ष ऐसा नहीं है जिसे अनुसंधान के अभाव में समुचित रूप से समझा जा सके। सामाजिक अनुसंधान का उद्देश्य केवल सैद्धान्तिक ज्ञान में वृद्धि करना ही नहीं होता बल्कि मानवीय समस्याओं का समाधान खोजने तथा भावी चुनौतियों का प्रत्युत्तर देने में भी यह उतना ही अधिक सहायक है। आज यह कल्पना भी नहीं की जा सकती कि सामाजिक अनुसंधान के बिना सामाजिक जीवन को संगठित और प्रगतिशील बनाया जा सकता है।

सामाजिक अनुसंधान की सीमाएँ (Limitations of Social Research)

सामाजिक अनुसन्धान के महत्व को देखते हुए यह नहीं मान लेना चाहिए कि यह एक दोष–रहित विधि है। जब हम सामाजिक अनुसंधान के द्वारा सामाजिक जीवन के विभिन्न पक्षों का अध्ययन करते हैं, तब हमें अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। यही कठिनाइयाँ सामाजिक अनुसंधान की सीमाएं हैं। इन्हें संक्षेप में निम्नांकित रूप से समझा जा सकता है–

1. सामाजिक घटनाओं की जटिलता–

साधारणतया सामाजिक अनुसंधान के द्वारा केवल उन्हीं घटनाओं का अध्ययन संभव है जो मूर्त अथवा स्थूल प्रकृति की हो। इसके विपरीत, सामाजिक जीवन से सम्बन्धित अधिकांश घटनायें अमूर्त अथवा अदृश्य होती है जिसके फलस्वरूप अनुसंधान द्वारा उनकी वास्तविक प्रकृति को समझना बहुत कठिन हो जाता है।

2. अवधारणाओं में स्पष्टता की कमी–

प्रत्येक विज्ञान की अपनी कुछ विशिष्ट अवधारणायें होती है जिनका उस विषय के सभी विद्वान समान अर्थ में प्रयोग करते हैं। ये अवधारणायें सामाजिक अनुसंधान को आगे बढ़ाने में योग देती हैं। अभी सामाजिक विज्ञान प्राकृतिक विज्ञान के समान सर्वमान्य शब्दावली का विकास नहीं कर पाये हैं, अतः अनुसंधान के मार्ग में बाधा आती है।

3. अनुसंधानकर्ता का भावनात्मक लगावा–

सामाजिक अनुसंधान की एक आवश्यकता उसमें वैज्ञानिकता अथवा वस्तुनिष्ठता का होना है। इसके विपरीत, अनुसंधानकर्ता का भावनात्मक लगावा इस वैज्ञानिकता के मार्ग में बाधक है। एक अनुसंधानकर्ता जिन सांस्कृतिक मूल्यों और विश्वासों के अन्दर रहते हुए जीवन व्यतीत करता आया है, उन्हीं के बारे में पूरी तरह निष्पक्ष रहकर कोई वैज्ञानिक निष्कर्ष दे पाना अक्सर कठिन हो जाता है। उदाहरण के लिए, जाति व्यवस्था, नैतिकता, धर्म, विभिन्न सामाजिक वर्गों तथा अनुसूचित जातियों के बारे में

हमारी अपनी कुछ विशेष भावनायें होती हैं। ऐसी भावनायें केवल हमारे विश्वासों को ही प्रभावित नहीं करती बल्कि हमारे व्यवहार के तरीकों पर भी एक विशेष प्रभाव होता है। प्राकृतिक विज्ञानों में अनुसन्धानकर्ता की अपनी भावनाओं का कोई महत्व नहीं होता।

4. सामान्यीकृत ज्ञान का प्रभाव–

वैज्ञानिकता का सम्बन्ध वास्तविक ज्ञान से है, सामान्य ज्ञान से नहीं। प्रायः अनुसंधानकर्ता का सामान्य ज्ञान सामाजिक अनुसंधान की सत्यता के लिए एक बड़ी समस्या बन जाता है। अक्सर अनुसंधानकर्ता ऐसे निष्कर्ष देने का प्रयत्न करता है जो उसके सामान्य ज्ञान से मिलते–जुलते हो। अक्सर अनुसंधानकर्ता को यदि अपने सामान्य ज्ञान से भिन्न तथ्य प्राप्त होते हैं तो वह उन्हें असत्य मानकर उनमें अपनी इच्छानुसार संशोधन कर लेता है।

5. माप की प्रविधियों की कमी–

सामाजिक अनुसंधान में अनेक ऐसी घटनाओं का विशेष स्थान होता है जो अपनी प्रकृति से गुणात्मक होती है। सामाजिक सम्बन्ध, सामाजिक मनोवृत्तियाँ तथा सामाजिक मूल्य इसी तरह की विशेषतायें हैं। यही कारण है कि सामाजिक अनुसंधान को प्राकृतिक घटनाओं के अनुसंधान (जो परिमाणात्मक तथ्यों पर आधारित होते हैं) के समान यथार्थ नहीं कहा जा सकता।

6. प्रयोग का अभाव–

अधिकांश विद्वान प्रयोग को विज्ञान का आवश्यक आधार मानते हैं। जब हम प्रयोगशाला में प्रयोग करके कोई निष्कर्ष देते हैं तो इसमें अध्ययनकर्ता की इच्छा का कोई महत्व नहीं होता। इसके विपरीत, सामाजिक अनुसंधान के लिए किसी विशेष सामाजिक घटना को नियन्त्रित नहीं किया जा सकता। साम्प्रदायिक तनाव का अध्ययन करने के लिए संघर्ष की दशायें भी पैदा नहीं की जा सकती। इस दशा में सामाजिक अनुसंधान के लिए हमारे अधिकांश निष्कर्ष अवलोकन पर ही आधारित रहते हैं। यह अवलोकन हमेशा पक्षपातरहित हो, इसकी सम्भावना नहीं की जा सकती।

7. समुचित प्रशिक्षण का अभाव–

सामाजिक अनुसंधान की प्रकृति तभी सफल हो सकती है जब अनुसंधानकर्ता तथा अनुसंधान में भाग लेने वाले कार्यकर्ता समुचित रूप से प्रशिक्षित हों। इसके विपरीत, साधारणतया अध्ययन की शीघ्रता और धन के अभाव के कारण अनुसंधान कार्य से सम्बन्धित व्यक्तियों को पर्याप्त प्रशिक्षण नहीं मिल पाता। फलस्वरूप अधिकांश शोधकर्ता केवल औपचारिकता को पूरा करने के लिए तथ्यों को एकत्रित तो करते रहते हैं किन्तु उनका उद्देश्य अधिक से अधिक पारिश्रमिक प्राप्त करना होता है, अध्ययन को वैज्ञानिक बनाना नहीं।

8. सूचनादाताओं के मिथ्या कथन–

सामाजिक अनुसंधान की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि अध्ययन से सम्बन्धित सूचनादाता प्रत्येक सूचना को सही, स्पष्ट और यथार्थ रूप में प्रस्तुत करें। इसके विपरीत, अधिकांश सूचनादाता या तो सूचनाओं को तोड़–मरोड़कर प्रस्तुत करते हैं अथवा उनके द्वारा दी गयी सूचनायें कुछ पूर्वाग्रहों पर आधारित होती है। इसके फलस्वरूप भी सामाजिक अनुसंधान में वस्तुनिष्ठता की कमी हो जाती है।

9. अध्ययन का सीमित क्षेत्र–

सामाजिक अनुसंधान की एक प्रमुख सीमा इसके अध्ययन– क्षेत्र का बहुत सीमित होना है। इसका तात्पर्य यह है कि बहुत सी सामाजिक घटनायें इस प्रकार की होती है जिनका पक्षपातरहित और वैज्ञानिक अध्ययन नहीं किया जा सकता। उदाहरण के लिए, कुछ विशेष प्रकार के श्वेतवसन अपराधियों से उन दशाओं को ज्ञान कर सकता बहुत कठिन है जिनके अन्तर्गत वे अपराध करते हैं। स्वयं अनुसंधानकर्ता भी यदि कुछ विशेष सूचनायें एकत्रित नहीं कर पाता है तो वह मनमानी सूचनाओं के आधार पर ऐसे निष्कर्ष प्रस्तुत कर देता है जो उसकी अपनी उपकल्पना या इच्छा के अनुरूप हो। सामाजिक घटनाओं की प्रकृति परिवर्तनशील होने के कारण भी सामाजिक अनुसंधान का क्षेत्र बहुत सीमित रह जाता है।

10. सत्यापन की समस्या–

तकनीकी आधार पर सामाजिक अनुसंधान से प्राप्त होने वाले निष्कर्षों को तभी वैज्ञानिक माना जा सकता है जब उनकी विश्वसनीयता का सत्यापन किया जा सके। इसके विपरीत, अधिकांश सामाजिक घटनायें बार–बार घटित नहीं होती। इस दशा में जिन घटनाओं के आधार पर हम कुछ निष्कर्ष देते हैं, उनका सत्यापन करना बहुत कठिन हो जाता है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि सामाजिक अनुसंधान की अनेक सीमायें हैं, अतः इसका प्रयोग बहुत सावधानीपूर्वक होना आवश्यक है क्योंकि इसकी वास्तविक सफलता अनुसंधानकर्ता के वैयक्तिक प्रयत्नों तथा पक्षपातरहित मनोवृत्ति पर ही आधारित होती है।

●